International Journal of Humanities and Social Science Research
www.socialsciencejournal.in
ISSN: 2455-2070
Received: 05-01-2026, Accepted: 04-02-2026, Published: 19-02-2026
Volume 12, Issue 1, 2026, Page No. 223-226

गोरखनाथ के दृष्टिकोण में मानव जीवन का ध्येय

ममता[1], डॉ० जगदीश भारद्वाज[2]
[1] भाषा विभाग (संस्कृत), बाबा मस्तनाथ विश्व विद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा, भारत
[2] प्रोफेसर, भाषा विभाग (संस्कृत), बाबा मस्तनाथ विश्व विद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक, हरियाणा, भारत

सारांश
गोरखनाथ के दृष्टिकोण में मानव जीवन का ध्येय केवल सांसारिक उपलब्धियाँ नहीं, बल्कि सत्य बोध और शिवत्व की प्राप्ति है। यह ध्येय गुरु कृपा से ही सिद्ध होता है। गुरु के उपदेश से साधक की अज्ञान–निष्ठा समाप्त हो जाती है और वह माया प्रपंच के अंधकार में पुनः प्रविष्ट नहीं होता। गोरखनाथ की दृष्टि यह स्पष्ट करती है कि देह केवल साधन है साध्य नहीं। नाथ साहित्य में सत्य–बोध की तुलना स्वर्ण प्राप्ति से कि गई है– सांच का सबद सोना का रेख। यह रूपक छान्दोग्य उपनिषद् के उस कथन से तादात्म्य रखता है जहाँ सत्य को सर्वश्रेष्ठ मूल्य कहा गया है– सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। सदगुरु के सान्निध्य में प्राप्त सत्य–ज्ञान ही साधक को पिण्ड–सिद्धि से ब्रह्म सिद्धि की ओर ले जाता है। गोरखनाथ की दृष्टि से देखा जाए तो मानव जीवन न तो केवल सामाजिक कर्त्तव्यों तक सीमित है और न ही मात्र वैराग्य का आग्रह करता है अपितु वह सहज योग का मार्ग सुझाता है– यहाँ ग्रहस्थ जीवन में रहते हुए भी आत्मज्ञान संभव है। वे गुरु–कृपा, साधना, अनुशासन ओर अनुभव को शास्त्र से अधिक महत्व देते हैं। गोरखनाथ द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा ही मानवजीवन का ध्येय सम्भव है। इस सन्दर्भ में उनका नाथ सम्प्रदाय योग की अवधारणा पतञ्जली के योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः से तात्विक साम्य रखता है। अपितु नाथ परम्परा में यह सिद्धान्त साधनात्मक और प्रयोगात्मक धरातल पर अधिक विकसित रूप में दिखाई देता है। इस प्रकार गोरखनाथ की दृष्टि में मानव जीवन का ध्येय है– अविद्या का नाश, ओर अन्धकार से प्रकाश की और अग्रसर होना ओर द्वैत से मुक्ति और स्वयं में निहित परम सत्य का साक्षात्कार। यही नाथ परस्परा का केन्द्रिय दर्शक है।

मूलशब्दः दृष्टिकोण, ध्येय, साधना, विनय, वैराग्य, द्वैत

प्रस्तावना
गोरखनाथ के दृष्टिकोण में मुख्य रूप से मानव जीवन का ध्येय आत्मबोध की ओर ले जाना था। भारतीय दर्शन परम्परा में मानव जीवन से केवल जन्म मरण की जैविक प्रक्रिया न मानकर एक साधना–प्रधान यात्रा के रूप में देखा गया है, जिसका परम लक्ष्य आत्म बोध एवं मोक्ष की प्राप्ति है। वैदिक, उपनिषदिक, बौद्ध और शैव परम्पराओं में जीवन के उद्देश्य को विविध रूपों में प्रतिपादित किया गया है। इसी परम्परा में नाथ योग सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं महान योनी गोरखनाथ का चिंतन मानव जीवन के ध्येय को एक व्यावहारिक, अनुभूतिपरक और साधना केन्द्रित स्वरूप प्रदान करता है। नाथ साहित्य में सत्य–बोध की तुलना स्वर्ण प्राप्ति से की गई है– सांच का सबद सोना का रेख। [1] यह रूपक छान्दोग्य उपनिषद् के उस कथन से तादात्म्य रख्ता है जहां सत्य को सर्वश्रेष्ठ मूल्य कहा गया है– सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म। [2] सदगुरु के सान्निध्य में प्राप्त सत्य–ज्ञान ही साधक को पिण्ड–सिद्धि से ब्रह्म सिद्धि की ओर ले जाता है। [3] गोरखनाथ द्वारा चित्तवृत्तियों के निरोध द्वारा ही मानवजीवन का ध्येय सम्भव है। इस सन्दर्भ में उनका नाथ सम्प्रदाय योग की अवधारणा पतञ्जली के योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः से तात्विक साम्य रखता है। [4] गोरखनाथ का दर्शन केवल सैद्धान्तिक नहीं, अपितु अनुभवसिद्ध योग–दर्शन है। वे मानव न तो मात्र भोगवादी प्राणी मानते हैं और न ही कर्मकाण्डो में उलझा हुआ साधक, बल्कि उसे एक ऐसी चेतन सत्ता के रूप में देखते हैं, जिसमे शिवत्य की पूर्ण सम्भावना निहित है। उनके अनुसार मानव जीवन का वास्तविक उद्देश्य बाह्य आडम्बरों से मुक्ति पाकर स्वयं के भीतर निहित सत्य की खोज करना है। गोरखनाथ के दृष्टिकोण में मानव जीवन का ध्येय इन्द्रिय संयम, मनोनिग्रह और प्राण–साधना के माध्यम से चेतना के उत्कर्ष में स्थित है। हठयोग उनके यहाँ केवल शारीरिक क्रियाओं का समुच्चय नहीं, बल्कि एक समग्र आत्मपरिष्कार की विधि है, जिसके द्वारा साधक देह में रहते हुए देहातीत अवस्था का अनुभव करता है। इस प्रकार शरीर साधन बनता है और आत्म बोध साध्य। वर्तमान भौतिकवादी, तनावग्रस्त और मूल्य–विक्षूब्ध समाज में गोरखनाथ की जीवन–दृष्टि अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होती है। उनका चिन्तन मानव को आत्म–अनुशासन, गुरुकृपा और साधना के माध्यम से व्यक्तिगत रूपान्तरण एवं सामाजिक संतुलन की दिशा में अग्रसर करता है। अतः गोरखनाथ के दृष्टिकोण में मानव जीवन के ध्येय का अध्ययन न केवल दार्शनिक दृष्टि से, बल्कि समकालिन मानव जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

गोरखनाथ की दृष्टि में मानव जीवन का ध्येय
नाथ सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं महायोगी गुरु गोरखनाथ की वाणी केवल साधक–समाज के लिए नहीं, अपितु समस्त मानवता के लिए नैतिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक ध्येयों का स्पष्ट निरूपण करती है। गोरखनाथ ने जिन व्रतों का उल्लेख किया है, वे कर्म काण्ड प्रधान व्रत नहीं, अपितु आचरणात्मक, नैतिक तथा चेतनात्मक अनुशासन है। वस्तुतः ये व्रत ही मानव जीवन के परम ध्येय हैं, जिनके माध्यम से साधक आत्मोन्नति से परमसिद्धि की ओर अग्रसर होता है। इसलिए वे कहते हैं कि सच्चा व्रत वही है जो हृदय में धारण किया जाए, न कि केवल बाह्य क्रियाओं में सीमित रह जाए–

'सांचो व्रत कहे ये पारी, जिस भाव सो लेद्ध विचारी।' [5]
यह विचार उपनिषदों की उस भावना से पूर्णतः साम्य रखता है, जहां कहा गया है– 'नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यः।' [6] अर्थात् आत्म साक्षातकार बाह्य कर्मों से नहीं अपितु आन्तरिक साधना से सम्भव है।

मानव जीवन का ध्येय
गोरखनाथ ने मानव शरीर को कोई बाधा नहीं, अपितु योग साधना का साधन माना है। गोरखनाथ मानव जीवन के ध्येय को स्पष्ट स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि यह जीवन केवल भोग अथवा कर्म–संचय के लिए नहीं, अपितु चेतना के उत्कर्ष और आत्मबोध

के लिए है। सिद्ध–सिद्धान्त पद्धति में कहा गया है कि जीव जब देहबोध से ऊपर उठकर शिवभाव को प्राप्त होता है, तभी जीवन का ध्येय सिद्ध होता है। [7] यह अवधारणा उपनिषदों के 'अहं ब्रह्मास्मि' [8] तथा गीता के 'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा' के तात्विक निष्कर्ष से पूर्णतः मेल खाती है। [9]

गुरुप्रधानताः मानव जीवन का ध्येय

गोरखनाथ के अनुसार गुरु–प्राप्ति मानव जीवन का सर्वोच्च ध्येय है। उनके पद में प्रथम व्रत के रूप में गुरु की प्राप्ति और गुरु–भक्ति का उल्लेख है– 'एक व्रत गुरुमुखि लहे भेवा।' यह कथन नाथ परम्परा की मूल भावना उद्घाटित करता है। गुरु यहां केवल उपदेशक नहीं, अज्ञान–नाशक, साधना–पथ–प्रदर्शक एवं ब्रह्मज्ञान का साक्षात् सेतु है। नाथ परम्परा का यह सिद्धान्त वेदान्त दर्शन से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है– 'तद्विज्ञानार्थं से गुरुमेवभिगच्छेत्। [10] गोरखनाथ की दृष्टि में गुरु के बिना योग, ज्ञान एवं मुक्ति अपूर्ण हैं। सिद्ध सिद्धान्त पद्धति में गुरु को परम तत्त्व के साक्षात् प्रतिनिधि के रूप में स्वीकार किया गया है। [11] डॉ० मोहन सिंह के अनुसार 'नाथ परम्परा में गुरु तत्त्व केवल आध्यात्मिक नहीं, अपितु सामाजिक एवं नैतिक अनुशासन का भी केन्द्र है।' [12]

शील, सन्तोष और सेवाः सामाजिक एवं नैतिक ध्येय

गोरखनाथ परम्परा और भारतीय नैतिक दर्शन में इन्हें साथ–साथ समझना चाहिए, क्योंकि ये एक–दूसरे को पोषित करते हैं। गोरखनाथ के व्रतों में शील (सदाचार) संतोष एवं सेवा का विशेष महत्व है– 'पूजा व्रत संतोष सेवा।' यह विचार भगवद्गीता के निष्काम कर्मयोग के पूर्णतः सांमजस्य रखता है– 'योगः कर्मसु कौशलम्।' [13] नाथ योग में सेवा को साधना का अंग माना गया है। गोरक्षशतक में कहा गया है कि जिस साधक में करुणा नहीं, उसकी योग साधना निष्फल है। [14] डॉ० गोपीनाथ कविराज स्पष्ट करते हैं कि नाथयोग में करुणा और योग परम्पर विरोधी नहीं, अपितु पूरक हैं। [15]

शीलः गोरखनाथ परम्परा में शील को योग–साधना की पहली शर्त माना गया है, क्योंकि अशुद्ध आचरण से चित्त स्थिर नहीं हो सकता।

संतोषः हठयोग में संतोष से मन की चञ्चलता शान्त होती है।

सेवाः गोरखनाथ परम्परा में सेवा की साधना का विस्तार माना गया है।

नैतिक ध्येयः भारतीय परम्परा में नैतिक ध्येय को धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है। गोरखनाथ परम्परा में यह ध्येय आत्म–संयम, साधना और लोक–कल्याण के संतुलन से जुड़ा है।

दया, सत्य एवं अहिंसाः चित्त–शुद्धि का ध्येय

ये तीनो गुण मनुष्य के अन्तःकरण को निर्मल, करूणामय और स्थिर बनाते हैं। गोरखनाथ का दया व्रत बौद्ध, जैन एवं वैदिक परंपरा से संवाद करता हुआ प्रतीत होता है– 'तीजाव्रत दया चित्त रहो।' यह ऋग्वेद के ऋत सिद्धांत तथा महाभारत के अहिंसा परमो धर्मः की प्रतिध्वनि है। पतंजलि योगसूत्र में यम के रूप में अहिंसा को प्रथम स्थान दिया गया है। [16] नाथयोग में दया केवल सामाजिक मूल्य नहीं, अपितु प्राण चेतना की शुद्धि का साधन है। [17]

इन्द्रिय–निग्रह एवं अमनस्क अवस्थाः आध्यात्मिक ध्येय

नाथ परम्परा में साधना का अंतिम लक्ष्य आत्मबोध एवं मुक्ति है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इन्द्रिय निग्रह और अमनस्क अवस्था को अत्यन्त महत्त्वपूर्व साधन तथा साध्य माना गया है। योग, उपनिषद तथा नाथ परम्परा में एक दोनों का घनिष्ठ एवं अविभाज्य संबंध स्वीकार किया गया है।

गोरखनाथ के अनुसार वास्तविक व्रत वह है जो मन और इन्द्रियों को स्थिर करे– 'मन इन्द्रिन को स्थिर राखै।' यही नाथ योग की अमनस्क साधना है, जहां मन प्राण में लीन होकर उन्मन अवस्था को प्राप्त करता है। [18] यह अवस्था योग चूड़ामणि उपनिषद् की समाधि संस्था में मेल खाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता में गुरुतत्त्व और ध्येय

श्रीमद्भगवद्गीता का परम ध्येय मोक्ष, आत्मसाक्षात्कार एवं ईश्वर प्राप्ति है। यह ध्येय तीन प्रमुख मार्गों से सिद्ध होता है– (1) कर्मयोग, (2) ज्ञानयोग और (3) भक्ति योग। गीता में अर्जुन का कृष्ण के समक्ष शरणागति भाव गुरु–शिष्य परम्परा का आदर्श उदाहरण है– 'तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।[19] यह श्लोक गुरुतत्त्व की तीन शर्तें स्पष्ट करता है, प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा जो जीवन–ध्येय की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। नाथ परम्परा में यही भाव योग–दीक्षा, सेवा और गुरु आज्ञा के पालन के रूप में विकसित हुआ।

गुरु कृपा और ध्येय–साधना का सम्बन्ध

आध्यात्मिक परम्परा में साधना की सफलता का मूल आधार गुरु–कृपा मानी गई है। साधक का ध्येय चाहे आत्मबोध हो, ईश्वर–प्राप्ति हो अथवा मोक्ष–उसकी सिद्धि गुरु कृपा के बिना अपूर्ण मानी जाती है। गुरु केवल मार्गदर्शन नहीं, बल्कि साधक की चेतना को जाग्रत करने वाले आध्यामिक प्रकाश हैं। नाथ साहित्य में 'जीवन के लक्ष्य' के स्थान पर 'ध्येय' शब्द का प्रयोग अधिक सार्थक एवं दार्शनिक है। ध्येय केवल बाह्य उपलब्धि नहीं, अपितु आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया है। गोरखनाथ के अनुसार गुरु ही वह तत्त्व है जो साधक को पिण्डपद से परम–पद की ओर ले जाता है। गोरक्षशतक में कहा गया है कि गुरु के उपदेश से ही योग का वास्तविक स्वरूप उद्घाटित होता है। [20] गोरक्षसंहिता एवं योगबीज में गुरु को योगविद्या का प्रत्यक्ष दाता माना गया है। हठयोग प्रदीपिका (स्वात्माराम) में भी गुरु–परम्परा को हठयोग की आधारशिला स्वीकार किया गया है। [21]

स्वयं–संवेध परम पद, गुरु–कृपा और नाथ योग का ध्येय

नाथयोग परम्परा में जिस परम अवस्था का निरूपण किया गया है, उसे केवल बुद्धिगम्य ज्ञान या इन्द्रियजन्य अनुभूति के स्तर पर नहीं समझा जा सकता। यह अवस्था 'स्वयं–संवेध परमपद' के नाम से अभिहित है। स्वयं–संवेध का आशय उस अनुभूति से है, जिसमें साधक का चित्त बाह्य विषयों से पूर्णतः निवृत्त होकर स्वयं अपने स्वभावस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यह अवस्था न तो वाच्य है, न तर्कसिद्ध, अपितु अनुभूति सिद्ध है।

सद्गुरु–सान्निध्यः ध्येय–प्राप्ति का मूलाधार

गोरखनाथ स्पष्ट करते हैं कि शान्ति, मुक्ति एवं मोक्ष–प्राप्ति का एकमात्र साधन सद्गुरु के चरणकमलों का आश्रय है– 'अनुभूति–स्थितयो निजविश्रमे स गुरुपादसरोजमाश्रयेत्। [22] यह सिद्धान्त मुण्डकोपनिषद् के उस कथन से प्रतिध्वनित होता है– 'तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्। [23]

सदगुरु–कृपा, ध्येय–सिद्धि एवं नाथ योगदर्शन

नाथयोग परम्परा में सद्गुरु की कृपा को योग–साधना का मूल आधार स्वीकार किया गया है। योग केवल शारीरिक या मानसिक अभ्यास न होकर चित–शुद्धि, प्राण–संयम और आत्मबोध की एक समग्र साधना है, जिसकी पूर्णता सद्गुरु के अनुग्रह के बिना असंभव मानी गई है। गोरखनाथ के अनुसार योग–साधक जब सद्गुरु के सानिध्य में विनय, श्रद्धा और आत्मसमर्पण के साथ साधना करता है, तब वह सहज रूप से पिण्ड–सिद्धि, प्राण–जय तथा अंततः परमपद अर्थात् कैवल्य अथवा मोक्ष की ओर अग्रसर

होता है। नाथ ग्रन्थ सिद्ध–सिद्धान्त पद्धति में स्पष्ट कहा गया है कि पिण्ड (देह) ही ब्रह्माण्ड का संक्षिप्त रूप है– 'पिण्डे सो ब्रह्माण्डे।' [24] यह पिण्ड–बोद्ध तभी संभव है जब साधक को सद् गुरु–प्रदत्त आदेश प्राप्त हो, क्योंकि गुरु ही शिष्य को बाह्य प्रपंच से अंतर्मुखी साधना की ओर ले जाता है। [25]

गुरु–विनय और ज्ञान–प्राप्ति

गोरखनाथ की वाणी में गुरु महिमा का निरूपण अत्यन्त मार्मिक एवं तत्त्वपूर्ण है। वे गुणवान और बुद्धिमान साधकों को संबोधित करते हुए कहते हैं कि अनन्त सिद्धों की वाणी का सार यही है कि सद्गुरु के चरणों में विनयावनत होने से ही वास्तविक ज्ञान उदित होता है–

'सुणि गुणवंता सुणिबुद्धिवंता, अंनत सिधा की वाणी।
ससनवावत सत्गुरु मिलिया, जागत रैणि बिहांणी।। [26]

यहाँ जगत रैणि बिहांणी का तात्पर्य अज्ञान रात्रि के क्षय से है। यह भाव वेदान्त दर्शन के अविद्या–निवृत सिद्धान्त से पूर्णतः साम्य रखता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है– 'तमसो मा ज्यातिर्गमय।' [27]

अर्थात् अज्ञान रूपी अन्धकार से ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर गमन। नाथ परम्परा में यह गमन गुरुकृपा के माध्यम से सम्भव होता है। [28]

ध्येय–सिद्धि और गुरु–अनुग्रह

गोरखनाथ के अनुसार मनुष्य का परम ध्येय केवल सांसारिक उपलब्धियां नहीं, बल्कि सत्य–बोध और आत्म साक्षात्कार है। यह ध्येय गुरुकृपा से ही सिद्ध होता है। गुरु के उपदेश से साधक की अज्ञान–निशा समाप्त हो जाती है और वह माया प्रपंच के अन्धकार में पुनः प्रविष्ट नहीं होता। नाथ साहित्य में सत्य–बोध की तुलना स्वर्ण प्राप्ति से की गई है– 'सांच का सबद सोना का रेख।[29] यह रूपक छान्दोग्य उपनिषद् के उस कथन से तादात्म्य रखता है, जहाँ सत्य को सर्वश्रेष्ठ मूल्य कहा गया है– सत्यं जानमनन्तं ब्रह्म। [30] सद्गुरु के सान्निध्य में प्राप्त सत्य–ज्ञान ही साधक को पिण्ड–सिद्धि से ब्रह्म–सिद्धि की ओर ले जाता है। [31]

ब्रह्मचर्यः नाथ योग का केंद्रीय ध्येय

नाथ परम्परा में ब्रह्मचर्य केवल देहगत संयम नहीं, अपितु चित्त, प्राण और बिन्दु का सम्यक् अनुशासन है। गोरखनाथ कहते हैं– 'धन जोबन की करेन आत, चित्त न राबै कामिनि पास।' यहाँ स्पष्ट है कि धन–यौवन की आसक्ति तथा कामिनि–सगं से चित्त का विचलन योगसाधना में बाधक है। गोरक्ष–शतक में बिन्दु–रक्षण को योगसिद्धि की कुंजी कहा गया है– 'बिन्दुर्मूलं शरीरस्य, बिन्दुपाते विनश्यति।' [32] गोरक्षसंहिता तथा योग मार्तव्य में भी यही प्रतिपादित है कि बिन्दु–संयम से ही प्राण की स्थिरता और मन की एकाग्रता संभव है। यह दृष्टि पतंजलि योगसूत्र के ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः [33] से पूर्णतः संगत है।

गोरखनाथ का बहिरंग अन्तरंग योगः ध्येय–साधना

गोरखनाथ योगमार्ग में बाह्य आडम्बरों के स्थान पर अन्तरंग साधना की प्रधानता देते हैं। वे स्पष्ट करते हैं कि हिमालय की उपत्यकाओं में उत्तर दिशा की और निवास करना, गेरुआ वस्त्र धारण करना, पर्वतीय झरनों के जल का पान करना तथा एकान्त में चित्त को स्थिर कर योगाभ्यास करना सभी साधनाएँ बहिरंग योग के प्रतिकात्मक रूप हैं। इनका महत्त्व नकारा नहीं गया है, अपितु गोरखनाथ के अनुसार इन्हें ही योग की पराकाष्ठा मान लेना साधक को मूल ध्येय से विमुख कर देता है। नाथ परम्परा में यह बार–बार प्रतिपादित किया गया है कि वास्तविक योग–साधना बाह्य देशकाल में नहीं अपितु देहस्थ ब्रह्माण्ड के भीतर सम्पन्न होती है। [34]

गोरखनाथ का जीवन–ध्येय और योगिक आचार

मुख्य रूप से गोरखनाथ के जीवन का ध्येय मनुष्य को आत्मबोद्ध की ओर ले जाना था। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए वे कठोर ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, आहार–शुद्धि, शारीरिक शौच, मानसिक निर्मलता तथा मांस–मदिरा का पूर्ण त्याग अनिवार्य मानते हैं।

गोरक्षाशतक को कहा गया है– 'शुद्धे देहे शुद्धचित्ते योगः सिध्यति नान्यथा' [35] यह सिद्धान्त हठयोग प्रदीपिका में भी प्रतिध्वनित होता है–'यम–नियम–आसन–प्राणायाम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधयः। [36] यहाँ स्पष्ट है कि योग केवल आसन या प्राणायाम नहीं, अपितु समग्र जीवन–शुद्धि की साधना है। यही कारण है कि गोरखनाथ बाह्य आडम्बरों, रुढ़ आचारों और दिखावटी धर्म का निषेध करते हैं। यह दृष्टि श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग से पूर्वत सामंजस्य रखती है– न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। [37] अर्थात् बिना कर्तव्य– पालन के न तो शुद्धि संभव है और न ही आत्मसिद्धि।

योग बीज में कहा गया है– 'जीवो ब्रह्मैव नापरः' [38] यह कथन अद्वैत वेदान्त के जीव–ब्रह्म ऐक्य का योगिक प्रतिपादन है। गोरखनाथ इस ऐक्य को अनुभव के धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं न कि केवल शास्त्रीय वाद–विवाद में।

निष्कर्ष

इस प्रकार गोरखनाथ द्वारा प्रतिपादित जीवन–ध्येय आत्मशुद्धि, ब्रह्मानुभूति और लोक मंगल का समन्वित स्वरूप है। गुरु–कृपा, सत्संग, योगिक आचार और वेदान्तीय तत्त्वों के समन्वय से ही मानव अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का साक्षात्कार कर सकता है। यही नाथ–योग का परम उद्देश्य है और यही मानव–सभ्यता को उच्चतर स्तर तक ले जाने वाली प्रेरक शक्ति है। यह स्पष्ट होता है कि गोरखनाथ के दृष्टिकोण में मानव जीवन का ध्येय स्वपरिवर्तन द्वारा विश्व कल्याण, अविद्धा से विद्या की यात्रा और देह में रहते हुए देहातीत अवस्था की प्राप्ति है। उनका चिन्तन आज के यांत्रिक तनावग्रस्त और भौतिकवादी समाज के लिए न केवल प्रासंगिक है, अपितु एक व्यावहारिक आध्यात्मिक समाधान भी प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सुची

1. गोरखबानी, पद 34
2. छान्दोग्य उपनिषद् 6.2.1
3. Briggs, 1938, P. 142
4. योग सूत्र 1.2
5. गोररखबानी, परिशिष्ट, 2
6. कठोपनिषद् 1.2.23
7. सिद्ध–सिद्धान्त–पद्धति, पृ. 201–205
8. बृहदारण्यक उपनिषद 1.4.10
9. श्रीमद्भगवद्गीता 18.54
10. मुण्डको उपनिषद 1.2.12
11. गोरखनाथ, सिद्ध–सिद्धान्त–पद्धति, पृ.18–20
12. गोरखनाथ और उनका योग–दर्शन, पृ. 74
13. श्रीमद्भगवत्गीता 2.50
14. गोरक्षशतक, श्लोक 21–22
15. नाथयोग और तन्त्र, पृ. 112–115
16. योगसूत्र 2.30
17. योगबीज, श्लोक 54–56
18. अमृत सिद्धि, पृ. 61–65
19. गीता 4.34
20. गोरक्षशतक, श्लोक 12
21. हठयोग प्रदीपिका 1.1/1–4
22. सिद्ध–सिद्धान्त–पद्धति 5.45

23. मुण्डकोपनिषद् 1.2.12
24. सिद्ध–सिद्धान्त–पद्धति 2/13
25. Mallinson, 2011, P–112
26. गोरखबानी, सबदी 107
27. बृहदारण्यक उपनिषद 1.3–28
28. white, 2009, P-86
29. गोवखबानी, पद 34
30. छान्दोग्य उपनिषद् 6.2.1
31. Briggs 1938, P- 142
32. गोरक्षशतक, श्लोक 23
33. योगसूत्र, 2.38
34. Mallinson, 2011, P.78
35. गोरक्षशतक, श्लोक 12
36. हठयोग प्रदीपिका 1.17–18
37. गीता 3.4
38. योगबीज, श्लोक 89